E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रकृति-चित्रण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

ध्वनि-सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है-"वस्तु च सर्वमेव जगद्गतमवश्यं कस्यचिद् रसस्य भावस्य वा प्रतिपद्यते अन्ततो विभावत्वेन"। अर्थात् संसार की जड़ चेतन समस्त वस्तुएँ काव्यगत किसी रस या भाव का अङ्ग बन सकती है।

महाकवि कालिदास ने इस तथ्य को भली-भाँति समझा है। परिणामतः उनके काव्यों में स्थावर एवं जङ्गम (जड़ एवं चेतन) सभी पदार्थों का यथार्थ तथा हृदयग्राही चित्रण हुआ है। विधाता की इस सुविशाल सृष्टि में चतुर्दिक् विराजमान प्रकृति का सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक पर्यवेक्षण कर उनके द्वारा किया गया प्रकृति का वर्णन संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। उनके प्रकृति-वर्णन में जो सजीवता, भव्यता, रमणीयता एवं गतिशीलता दृष्टिगोचर होती है वह अन्य दुर्लभ है। उनकी व्यापक एवं सूक्ष्म दृष्टि वन, उपवन, पर्वत, सरिता, स्रोत; पुष्प, वृक्ष, लता, चन्द्र, सूर्य, तारा, आकाश, पशु-पक्षी, ऋतु, प्रकृति के इन सभी अङ्गों में रमी है। ऋतुसंहार नामक सम्पूर्ण खण्ड-काव्य में केवल प्रकृति का ही अखण्ड साम्राज्य चित्रित है, जहाँ छः ऋतुयें अपने भव्य रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। 'मेघदूत' का पूर्व मेघदूत तो मानो प्रकृति रमणी की विलासमय चेष्टाओं की क्रीड़ास्थली ही है। कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग का हिमालय-वर्णन न केवल संस्कृत साहित्य का प्रत्युत विश्व साहित्य का महनीय अङ्ग है। उसके प्रारम्भिक पाँच सर्ग द्रष्टव्य है जहाँ प्रकृति में दैवी विभूतियों के साक्षात् दर्शन होते हैं। रघुवंश में वर्णित प्रभात समुद्र, तपोवन, आदि जहाँ एक ओर हमें आनन्द-विभोर बनाते हैं, वहीं तेरहवें सर्ग का वसन्त वर्णन जीवन में एक नया स्पन्दन तथा प्रेम जगा देता है। उसी सर्ग में गङ्गा-यमुना के सङ्गम का सजीव तथा विम्बग्राही वर्णन किसे आह्लादित और आप्लावित नहीं कर देता? उक्त काव्यों के

अतिरिक्त उनके नाटकों में भी प्रकृति का सजीव चित्रण उपलब्ध होता है। आगे शाकुन्तल में अङ्कित प्रकृति-चित्रण पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जायेगा-

१. विशालता एवं व्यापकता- कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्राकृतिक छटाओं से ओत-प्रोत एक ऐसी रङ्गशाला है जहाँ प्रकृति-नटी अपनी हृदयावर्जक एवं मनोरम अभिनय कला द्वारा सहृदयों को मन्त्रमुग्ध कर देती है। शाकुन्तल के प्रारम्भिक मङ्गलाचरण में अपने अभीष्ट देव भगवान् भूतनाथ की दिव्य अष्टमूर्तियों का साक्षात्कार प्रकृति के ही भीतर करके कवि जन-मङ्गल की कामना करता है-

"या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यथा प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः"।।

प्रकृति की विशालता एवं दिव्यता के प्रति कवि के हृदय में किस प्रकार श्रद्धामूलक भाव हैं। इसका पता इस पद्य से सहज ही चल जाता है।

२. प्रकृति वर्णन को बिम्बग्रहणशीलता-कालिदास प्रकृतिगत वर्ण्यविषय का सजीव चित्र अङ्कित करने में अति कुशल हैं। निम्नाङ्कित पद्य में भयाकुल मृग का सच्चा चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है जिससे कवि की प्रकृति के यथार्थ बिम्ब-ग्रहण की क्षमता का द्योतन होता है-

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।।

अधोलिखित पद्य में ग्रीष्म ऋतु का अति स्वाभाविक चित्रण हुआ है-

"सुभग सलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः"।।

नीचे कण्व के आश्रम के सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन के पठन मात्र से ही आश्रम के सच्चे स्वरूप के दर्शन हो जाते हैं-

"नीवाराः शुकगर्भकोटर मुख भ्रष्टास्तरूणामधः
प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गुदीफलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा-
स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्द रेखाङ्किताः"।।

३. मानवीय सौन्दर्य वृद्धि में प्रकृति का साहाय्य- कालिदास वस्तुतः प्रकृति के कोमल स्वरूप के चित्रकार हैं। उनकी आस्था है कि प्रकृति में ही सच्चे सौन्दर्य के दर्शन हो सकते हैं क्योंकि प्रकृति का सारा सौन्दर्य स्वाभाविकता की आधारशिला पर आधारित है। इसीलिये वे मानव सौन्दर्य की तीव्रता एवं यथार्थता की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति का आश्रय लेते हैं। निम्नाङ्कित पद्य में प्रकृतिक उपादानों के माध्यम से अभिव्यक्त तथा रमणीयता, मुग्धता एवं उपभोग योग्यता आदि से मण्डित शकुन्तला का सौन्दर्य किसे नहीं लुभा देता?

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैरनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः"।।

निम्नाङ्कित पद्य में किसलयराग, कोमलविटप (शाखा) एवं कुसुम रूप प्राकृतिक उपमानों से शकुन्तला का यौवन-मण्डित सौन्दर्य निखर सा जाता है-

अधरः किसलय रागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

निम्नाङ्कित श्लोक में शकुन्तला के सहज रूपलावण्य का मूर्तिमान रूप उपस्थित करने के लिए कवि ने शैवाल (सिवार) से आवृत कमल तथा कलङ्क से मण्डित चन्द्रमा से सहायता ली है-

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।।

छठे अङ्क में शकुन्तला के चित्र निर्माण के अवसर पर राजा द्वारा "कार्या सैकतलीनहंसमिथुना....." तथा "कृतं न कर्णार्पित बन्धनम् सखे ....." कही गयी उक्तियाँ भी उक्त तथ्य को प्रमाणित करती हैं। मेघदूत की "तन्वी श्यामा....." तथा "श्यामास्वङ्ग....." आदि वर्णनों में भी उक्त तथ्य के दर्शन होते हैं।

४. **अन्तःप्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का सामञ्जस्य**- शाकुन्तल में मानव की अन्तःप्रकृति तथा बाह्य-प्रकृति के बीच एक अपूर्व सामञ्जस्य का चित्रण किया गया है। निम्नांङ्कित श्लोक में चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वल्लभवियोग से व्यथित कुमुदिनी की व्यथा के साथ वियोग-विक्लवा शकुन्तला की अन्तर्व्यथा का सामञ्जस्य कितना मर्मस्पर्शी है-

"अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि"।।

५. प्रकृति का मानवीय करण- कालिदास के प्रकृति-वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति में चेतनता एवं मानवीय वृत्तियों का आरोप। उन्होंने अपनी अलौकिक कल्पना और प्रतिभा द्वारा प्रकृति की जड़ता समाप्त कर उसमें भावप्रवणता, गतिशीलता तथा चेतना का संचार कर दिया है। प्रकृति के प्रति मनुष्य का प्रेम चित्रित करते-करते उनकी भावना मनुष्य के प्रति प्रकृति का प्रेम चित्रित करने लगती है। दर्शनिक दृष्टि से प्रकृति भले ही जड़ तथा आत्मविहीन पदार्थ प्रतीत हो परन्तु महाकवि कालिदास की सूक्ष्म दृष्टि प्रकृति के भीतर सहानुभूति एवं दुःख-सुख की स्थिति में उद्भूत सम्वेदना का स्वयं अनुभव करती है। इसीलिये उनकी प्रकृति भावनाशील है और मानव जगत् के प्रति उनके हृदय में पूर्ण सहानुभूति है।

शाकुन्तल में सारी प्रकृति एवं शकुन्तला पूर्णतः घुल मिल गयी है तथा प्रकृति एवं शकुन्तला का पारस्परिक सौहार्द्र इतनी पराकाष्ठा पर पहुंचा है कि महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई के अवसर पर तपोवन के वृक्षों से विदाई की अनुमति लेना आवश्यक समझ कर उन्हें सम्बोधित करते हुए कहते हैं-

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुमुमप्रसूतिसमये यस्याः भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

यहाँ प्रकृति ने अपने स्वरूप का परित्याग नहीं किया है। वह अपने स्वरूप की रक्षा करती हुई मानव के समान सचेतन एवं सजीव हो गयी है। उसकी मूकता, चेतनाहीनता और निष्प्राणता समाप्त हो गयी है। वह मानव के समान है और सुख-दुःख तथा सम्वेदना का अनुभव करती है। शकुन्तला के प्रति सहानुभूतिवश जहाँ एक ओर वन के वृक्ष विदाई के अवसर पर विविध माङ्गलिक वस्त्रों और अलङ्कारों को प्रदान करते हैं। वहीं शकुन्तला के वियोग से व्यथित सारी प्रकृति सारा कामधाम छोड़कर वियोग-व्यथा से तड़प जाती है-

"उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः"।।

महर्षि कण्व का आँसू कण्ठ तक ही आकर रुक जाता है। वनलताओं के आँसू भीतर रुक नहीं पाते। इसी प्रकार वनज्योत्सना का अपनी शाखा रूपी बाहुओं को फैलाकर अपनी बहन शकुन्तला के भेंट करना-"वनज्योत्सने.....शाखाबाहुभिः"। पुत्रवत् पालित मृगशावक का धरना देकर शकुन्तला को रोकना- "को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते"।

शकुन्तला का पशुपक्षियों का पुत्रवत् पालन करना सभी कुछ प्रकृति तथा मानव के अतिशय सान्निध्य को सूचित करता है । इस प्रकार सारी प्रकृति अन्य पात्रों की भाँति एक सजीव पात्र बन गयी है। नाटक का प्रारम्भ ग्रीष्म ऋतु के वर्णन से होता है, बीच की सारी क्रियायें प्रकृति के वितान रूप आश्रम में होती हैं और उसका अवसान भी मारीच के पावन प्रकृति के प्राङ्गण में होता है।